eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed (Refereed) International Journal
Volume 04, Issue 06, June 2025

भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवाधिकारों का बोधः एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण

डा0 यश कुमार[1]
[1]सहायक प्रोफेसर राजनीति विज्ञान, वी0 जी0 एम0 कालेज दिबियापुर, औरैया, उ0प्र0

Received: 15 June 2025 Accepted & Reviewed: 25 June 2025, Published: 30 June 2025

Abstract

यह शोध पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा और मानवाधिकारों के बीच अंतर्संबंध का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। आधुनिक मानवाधिकारों की अवधारणा मुख्यतः पाश्चात्य विचारों और विधिक संरचनाओं पर आधारित है, जबकि भारतीय दृष्टिकोण मानवाधिकारों को कर्तव्यों, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। शोध में यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा, वेदों, उपनिषदों, महाभारत, बौद्ध और जैन दर्शन, संत परंपरा तथा आधुनिक चिंतकों जैसे महात्मा गांधी और डॉ. आंबेडकर की शिक्षाओं, में मानवाधिकारों की एक सशक्त वैकल्पिक अवधारणा विद्यमान है। यह अवधारणा केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में भी अत्यंत प्रासंगिक है। इस शोध में यह भी स्थापित किया गया है कि भारतीय दृष्टिकोण मानवाधिकारों की नैतिक जड़ें मजबूत करता है और अधिकारों तथा कर्तव्यों के मध्य संतुलन स्थापित कर एक न्यायसंगत समाज की ओर उन्मुख करता है। यह अध्ययन यह संकेत करता है कि यदि भारतीय ज्ञान परंपरा को समकालीन मानवाधिकार विमर्श में उचित स्थान दिया जाए, तो यह एक अधिक समावेशी, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और नैतिक दृष्टिकोण विकसित कर सकती है।

कीवर्ड– भारतीय ज्ञान परंपरा, मानवाधिकार, अधिकार और कर्तव्य, नैतिकता, आधुनिक दृष्टिकोण, सामाजिक न्याय, वसुधैव कुटुंबकम, सर्वधर्म समभाव, सांस्कृतिक सापेक्षता, आधुनिकता और परंपरा का समन्वय।

Introduction

मानवाधिकार वह अवधारणा है, जो प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही स्वतः प्राप्त होती है। यह अधिकार किसी भी राज्य, समाज या संस्था द्वारा प्रदत्त नहीं होते, बल्कि मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता के आधार पर स्वाभाविक रूप से निहित होते हैं। आधुनिक समय में मानवाधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है और संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष 1948 में 'यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स' (UDHR) के माध्यम से इन्हें सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया गया। हालाँकि, मानवाधिकारों की यह आधुनिक अवधारणा पश्चिमी दृष्टिकोण से प्रेरित मानी जाती है। इसके विपरीत, भारतीय ज्ञान परंपरा में हजारों वर्षों से मानव जीवन, स्वतंत्रता, समानता और न्याय की अवधारणाओं पर गहराई से विचार किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण, जैन और बौद्ध साहित्य में व्यक्ति और समाज के अधिकार और कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। भारतीय दर्शन में अधिकार और कर्तव्य को एक–दूसरे का पूरक माना गया है, जहाँ व्यक्ति के कर्तव्यों का पालन स्वयं उसके अधिकारों की सुरक्षा का साधन बनता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में अधिकारों की अवधारणा आधुनिक मानवाधिकारों की तुलना में अधिक सामूहिक और नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित है। जहाँ आधुनिक मानवाधिकार मुख्य रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों पर केंद्रित होते हैं, वहीं भारतीय दृष्टिकोण में समाज की सामूहिक भलाई और संतुलन का विचार प्रमुख होता है। यह दृष्टिकोण मानव के नैतिक और आध्यात्मिक विकास पर बल देता

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed (Refereed) International Journal
Volume 04, Issue 06, June 2025

है, जो मानवाधिकारों की व्यापकता को एक नए दृष्टिकोण से समझने का अवसर प्रदान करता है। इस शोधपत्र के माध्यम से हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्या भारतीय ज्ञान परंपरा की मानवाधिकार संबंधी दृष्टि को आधुनिक मानवाधिकार अवधारणा के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए संशोधित या पुनःव्याख्यायित करने की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से यह शोधपत्र मानवाधिकारों की वैश्विक समझ को और अधिक समृद्ध और विस्तृत करने का एक प्रयास है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का परिचय– भारतीय ज्ञान परंपरा एक समृद्ध और विविधतापूर्ण विरासत है, जो हजारों वर्षों से चली आ रही है। यह परंपरा न केवल धार्मिक ग्रंथों और दर्शनशास्त्र तक सीमित है, बल्कि इसमें विज्ञान, कला, चिकित्सा, राजनीति, समाजशास्त्र और जीवन के विभिन्न आयामों का समावेश है। भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्रोत वेदों, उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों, महाकाव्यों (रामायण और महाभारत), जैन और बौद्ध साहित्य में पाया जाता है। इन ग्रंथों में न केवल जीवन के भौतिक पक्ष को समझाया गया है, बल्कि आध्यात्मिकता, नैतिकता और मानवता के गहरे सिद्धांत भी समाहित हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान को 'विज्ञान' और 'अविज्ञान' में विभाजित किया गया है, जहाँ विज्ञान से तात्पर्य भौतिक और व्यवहारिक ज्ञान से है, जबकि अविज्ञान से तात्पर्य आत्मज्ञान और आध्यात्मिक अनुभूति से है। उपनिषदों में 'तत् त्वं असि' (तुम वही हो) और 'अहम् ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) जैसे महावाक्यों के माध्यम से व्यक्ति की आत्मा और ब्रह्म के बीच के संबंध को उजागर किया गया है। यह दृष्टिकोण व्यक्ति और समष्टि के मध्य एक गहन एकात्मकता की भावना को प्रस्तुत करता है। महाभारत में श्रीमद्भगवद्गीता को एक उत्कृष्ट ज्ञान–ग्रंथ माना जाता है, जिसमें कर्म, भक्ति और ज्ञान योग के माध्यम से जीवन के गूढ़ रहस्यों को समझाया गया है। गीता में ''स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः'' का उपदेश दिया गया है, जो हर व्यक्ति को उसके नैतिक और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक करता है। बौद्ध और जैन दर्शन भी भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्वपूर्ण अंग हैं। बुद्ध के 'अष्टांगिक मार्ग' और महावीर के 'अहिंसा' के सिद्धांत मानव अधिकारों के संरक्षण और सम्मान की दृष्टि से आज भी प्रासंगिक हैं। इन सिद्धांतों में करुणा, अहिंसा, सत्य और समता के आदर्शों को प्रमुखता दी गई है, जो किसी भी मानवाधिकार प्रणाली के लिए आधारभूत माने जा सकते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें अधिकारों से अधिक कर्तव्यों पर बल दिया गया है। 'मनुस्मृति' और 'याज्ञवल्क्य स्मृति' जैसे ग्रंथों में कर्तव्यों के माध्यम से अधिकारों की सुरक्षा का दृष्टिकोण देखने को मिलता है। यहाँ यह विश्वास किया जाता है कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का सही प्रकार से पालन करता है, तो समाज में स्वतः ही अधिकारों की रक्षा होती है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक और गहन है, जो मानव जीवन के सभी पहलुओं को समाहित करते हुए उसे एक संतुलित और नैतिक ढाँचे में प्रस्तुत करता है। यह परंपरा मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा से काफी पहले से मानव गरिमा, स्वतंत्रता और समानता के विचारों का समर्थन करती रही है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवाधिकारों का गहन और स्वाभाविक बोध निहित है।

मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा– मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा का विकास 17वीं और 18वीं शताब्दी के यूरोपीय पुनर्जागरण और प्रबोधन काल के दौरान हुआ। इस अवधारणा का मूल उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की रक्षा करना है। आधुनिक मानवाधिकार विचारधारा का

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed (Refereed) International Journal
Volume 04, Issue 06, June 2025

आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही कुछ अधिकारों का हकदार होता है, जिन्हें किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। यह अधिकार किसी धर्म, जाति, वर्ग, नस्ल या लिंग के भेदभाव से मुक्त होते हैं।

मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा को औपचारिक रूप से 1948 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत ''विश्व मानवाधिकार घोषणा पत्र'' (Universal Declaration of Human Rights & UDHR) के माध्यम से वैश्विक स्तर पर मान्यता मिली। इस घोषणा पत्र में जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार, कार्य का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, और समानता के अधिकार जैसी अनेक स्वतंत्रताओं और अधिकारों को शामिल किया गया है।

इस घोषणा पत्र ने मानवाधिकारों को एक सार्वभौमिक मूल्य माना, जो किसी विशेष राष्ट्र या समाज की सीमाओं तक सीमित नहीं हैं। इसके बाद अनेक अंतरराष्ट्रीय संधियाँ, जैसे नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय समझौता (ICCPR) और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय समझौता (ICESCR) ने मानवाधिकारों को और अधिक व्यापक और संरचनात्मक रूप दिया।

आधुनिक मानवाधिकारों की अवधारणा का प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखा जा सकता है, जहाँ विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संगठन, न्यायालय और आयोग मानवाधिकारों की रक्षा और संवर्धन के लिए कार्य कर रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त (OHCHR) और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) जैसे संस्थान मानवाधिकारों के प्रति वैश्विक प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करते हैं।

आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह व्यक्ति को अधिकारों के साथ–साथ जिम्मेदारियों का भी बोध कराता है। यह अधिकार और दायित्व के बीच एक संतुलन की आवश्यकता पर बल देता है ताकि एक न्यायसंगत और समानता–आधारित समाज का निर्माण हो सके। हालांकि, आधुनिक मानवाधिकारों की अवधारणा का मुख्य केंद्र व्यक्ति है, लेकिन इसमें समाज और राष्ट्र की सामूहिक जिम्मेदारियों को भी मान्यता दी गई है। आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यह अवधारणा मानवाधिकार उल्लंघन के विरुद्ध एक सशक्त ढाल के रूप में उभरी है। यह सुनिश्चित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति का जीवन गरिमा, स्वतंत्रता और न्याय के साथ व्यतीत हो। इस प्रकार, मानवाधिकारों की आधुनिक अवधारणा का उदय ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप हुआ है, जो आज वैश्विक स्तर पर सभी मनुष्यों के लिए एक बुनियादी मान्यता बन चुकी है। भारतीय ज्ञान परंपरा की तुलना में यह दृष्टिकोण अधिक व्यक्तिगत और कानूनी रूप से संरक्षित है, जबकि भारतीय दृष्टिकोण अधिक नैतिक और सामुदायिक दायित्वों पर आधारित है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में अधिकार और कर्तव्य का समन्वय– भारतीय ज्ञान परंपरा का मूलभूत दर्शन यह है कि अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिन्हें अलग–अलग करके न तो समझा जा सकता है और न ही लागू किया जा सकता है। यह परंपरा व्यक्ति की स्वतंत्रता को स्वीकार करती है, लेकिन उसे निरंकुश नहीं मानती। इसके विपरीत, भारतीय दर्शन व्यक्ति की स्वतंत्रता को नैतिक अनुशासन और सामाजिक जिम्मेदारी के साथ जोड़ता है। इस दृष्टिकोण में अधिकारों की प्राप्ति से पूर्व कर्तव्यों के निर्वहन को आवश्यक माना गया है। यही कारण है कि भारतीय परंपरा में कोई भी अधिकार 'स्वतंत्र' नहीं, बल्कि 'संबद्ध' होता हैकृसंबद्ध समाज से, धर्म से, नैतिकता से और सामूहिक हित से। वेदों और उपनिषदों

में 'ऋत' जिसका अर्थ है सृष्टि का नैतिक क्रमकृका अत्यधिक महत्व है। यह नैतिक क्रम केवल ईश्वर और प्रकृति के बीच का संबंध नहीं है, बल्कि मनुष्य के कर्तव्यों और अधिकारों की एक व्यवस्थित प्रणाली भी है। ऋग्वेद की ऋचाओं में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' जैसी प्रार्थनाएँ यह प्रदर्शित करती हैं कि अधिकारों का अर्थ केवल आत्म–केंद्रित स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि वे दूसरों के प्रति हमारी जिम्मेदारियों से ही उपजते हैं। उपनिषदों में बार–बार यह संदेश मिलता है कि ज्ञान केवल तभी सार्थक है जब वह लोक कल्याण में प्रयुक्त हो। 'सर्वभूत हिते रतः' की भावना हमें यह सिखाती है कि अधिकारों का उपयोग समाज और समस्त प्राणिजगत के हित में होना चाहिए।

महाभारत, विशेषतः शांति पर्व, और भगवद गीता में स्पष्ट रूप से यह विचार आता है कि धर्म का पालन, जो मूलतः कर्तव्यों का ही पर्याय है, मानव जीवन का परम लक्ष्य है। अर्जुन का युद्ध से विमुख होना उसके 'अधिकार' के रूप में देखा जा सकता है, पर श्रीकृष्ण उसे यह समझाते हैं कि उसका कर्तव्य समाज और धर्म की रक्षा है, जो उसके अधिकार से ऊपर है। यही दृष्टिकोण रामायण में श्रीराम के चरित्र के माध्यम से प्रकट होता है, जहाँ वे व्यक्तिगत सुखों का त्याग कर केवला लोक–धर्म और कर्तव्य के पालन को प्राथमिकता देते हैं। मनुस्मृति और अन्य धर्मशास्त्रों में भी व्यक्ति के अधिकार उसकी सामाजिक भूमिका और कर्तव्यों से जुड़कर निर्धारित होते हैं। उदाहरणतः ब्राह्मण का अधिकार सम्मान पाने का है, लेकिन यह अधिकार तभी वैध है जब वह अपने अध्ययन, आचरण और समाजसेवा के कर्तव्यों का पालन करता है। इसी प्रकार, राजा के अधिकार (शासन) को भी केवल तभी मान्यता दी जाती है जब वह न्याय, दया और धर्म का पालन करता है। यह प्रणाली यह स्पष्ट करती है कि अधिकार किसी कानूनी दावे की अपेक्षा नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से अधिक जुड़ा हुआ है।

बौद्ध धर्म में 'अष्टांगिक मार्ग'सम्यक दृष्टि से लेकर सम्यक समाधि तक इस बात की ओर संकेत करता है कि आत्मिक शांति और सामाजिक समरसता तभी संभव है जब व्यक्ति अपने व्यवहार, वाणी और आजीविका में उत्तरदायित्वपूर्ण हो। यही विचार जैन धर्म में 'अहिंसा परमो धर्मः' के माध्यम से स्पष्ट होता है, जहाँ प्रत्येक प्राणी के प्रति अहिंसात्मक व्यवहार को कर्तव्य और अधिकार दोनों का मूल माना गया है। इन दोनों धार्मिक परंपराओं में यह स्पष्ट किया गया है कि जब तक व्यक्ति दूसरों के अस्तित्व का सम्मान नहीं करता, वह अपने अधिकारों के लिए नैतिक आधार नहीं पा सकता।

यह समन्वय भारतीय संविधान में भी परिलक्षित होता है। संविधान के भाग III में जहाँ मौलिक अधिकारों का उल्लेख है, वहीं भाग IV–। में मौलिक कर्तव्यों का भी समावेश किया गया है। अनुच्छेद 51–A में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे, महिलाओं का सम्मान करे, पर्यावरण की रक्षा करे, और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा दे। इसका आशय यह है कि भारतीय राज्य की आधुनिक कानूनी व्यवस्था भी उसी परंपरा का अनुसरण करती है जो अधिकार और कर्तव्य के बीच संतुलन पर आधारित है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब व्यक्ति अधिकारों की बात करता है लेकिन अपने कर्तव्यों को भूल जाता है, तब यह संतुलन टूटता है। परिणामस्वरूप समाज में नैतिक पतन, सामाजिक विघटन और अधिकारों के दुरुपयोग की स्थिति उत्पन्न होती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के इस गहरे और संतुलित दृष्टिकोण को पुनः समाज के केंद्र में लाया जाए।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed (Refereed) International Journal
Volume 04, Issue 06, June 2025

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा यह सिखाती है कि अधिकारों का असली सशक्तिकरण केवल तभी संभव है जब व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन निष्ठा और नैतिकता के साथ करे। यह दृष्टिकोण व्यक्ति को केवल अपने अधिकारों के लिए जागरूक नहीं करता, बल्कि उसे यह भी सिखाता है कि उसका अस्तित्व समाज, प्रकृति और सृष्टि के व्यापक ताने–बाने से जुड़ा हुआ है। अधिकार और कर्तव्य का यह संतुलन ही भारतीय ज्ञान परंपरा की आत्मा है, जो न केवल एक न्यायपूर्ण समाज की नींव रखता है, बल्कि मानव जीवन को अर्थ और दिशा भी प्रदान करता है।

भारतीय और आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण– भारतीय और आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण का आलोचनात्मक विश्लेषण यह दर्शाता है कि दोनों परंपराएँ मानव गरिमा और सामाजिक न्याय की स्थापना को लेकर प्रतिबद्ध हैं, किंतु उनके आधार, मूल प्रेरणाएँ, व्याख्या की पद्धतियाँ और व्यवहार में अंतर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। आधुनिक मानवाधिकार अवधारणा मुख्यतः पश्चिमी राजनीतिक आंदोलनोंकृजैसे पुनर्जागरण, फ्रांसीसी क्रांति, अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और औद्योगिक क्रांतिकृसे विकसित हुई है, जिसका केन्द्रबिंदु व्यक्ति है। इसके विपरीत, भारतीय मानवाधिकार दृष्टिकोण प्राचीन ग्रंथों, धार्मिक परंपराओं और सांस्कृतिक नैतिकताओं से पोषित है, जहाँ व्यक्ति की पहचान समाज और उसके कर्तव्यों से निर्धारित होती है। आधुनिक मानवाधिकार संरचना 'यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स' (UDHR) पर आधारित है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा को सार्वभौमिक अधिकार के रूप में मान्यता देती है। यह दृष्टिकोण मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जन्मसिद्ध अधिकारों के साथ स्वतः ही राज्य से सुरक्षा और संरक्षण की अपेक्षा कर सकता है। इसके विपरीत, भारतीय दृष्टिकोण में अधिकारों का स्वरूप सामाजिक और नैतिक संदर्भों से बंधा होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में अधिकार किसी दैवी या कानूनी दावे से नहीं, बल्कि कर्तव्यों की पूर्ति के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

यह अंतर विशेष रूप से 'व्यक्तिवाद बनाम समुदायवाद' की अवधारणा में उभरकर सामने आता है। आधुनिक दृष्टिकोण में व्यक्ति सर्वोच्च है, जबकि भारतीय दृष्टिकोण में समाज का हित सर्वोपरि माना गया है। उदाहरणतः महात्मा गांधी का 'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' यह दर्शाता है कि व्यक्ति को संपत्ति और संसाधनों पर अधिकार तो है, लेकिन उसका प्रयोग समाज के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, भारतीय ग्रंथों में दिए गए नीति–नियमकृजैसे ''धर्मो रक्षति रक्षितः''यह स्पष्ट करते हैं कि अधिकारों की रक्षा तभी संभव है जब कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन किया जाए।

भारतीय दृष्टिकोण में नैतिकता का स्रोत धर्म, कर्म और पुनर्जन्म की अवधारणाओं में निहित होता है, जबकि आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष और विधिक व्यवस्था पर आधारित है। आधुनिक पद्धति में कर्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों को अधिक महत्व दिया गया है, जिससे व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति बढ़ी है, वहीं भारतीय परंपरा में व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी समाज और संस्कृति की मर्यादाओं में देखा गया है। यह कभी–कभी आलोचना का विषय बनता है, क्योंकि इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता सीमित प्रतीत होती है। वर्तमान युग की आवश्यकता है कि इन दोनों दृष्टिकोणों के बीच एक संतुलन स्थापित किया जाए। आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण की विधिक संरचना और सार्वभौमिकता को भारतीय दृष्टिकोण की नैतिकता, सामाजिकता और कर्तव्यबोध से जोड़ना एक नई राह खोल सकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में, जहाँ सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक समरसता की आवश्यकता पहले से अधिक है, भारतीय और आधुनिक दृष्टिकोणों का समन्वय एक व्यावहारिक और न्यायसंगत मानवाधिकार ढांचा प्रस्तुत कर सकता है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A Monthly, Open Access, Peer Reviewed (Refereed) International Journal
Volume 04, Issue 06, June 2025

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय और आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण परस्पर विरोधाभासी नहीं हैं, बल्कि एक–दूसरे के पूरक हैं। जहाँ आधुनिक दृष्टिकोण अधिकारों की कानूनी सुरक्षा की बात करता है, वहीं भारतीय दृष्टिकोण उनके नैतिक आधार को मजबूत करता है। इन दोनों के समन्वय से एक ऐसा सामाजिक ढांचा निर्मित किया जा सकता है, जहाँ न केवल व्यक्ति के अधिकारों का सम्मान होता है, बल्कि वह अपने कर्तव्यों के प्रति भी संवेदनशील रहता है, जिससे संपूर्ण मानवता का समुचित और संतुलित विकास सुनिश्चित हो सके।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा और मानवाधिकारों की प्रासंगिकता– आज के वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और उदारवादी राजनीतिक विमर्श के युग में, मानवाधिकार एक वैश्विक विमर्श का प्रमुख विषय बन चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र के सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणापत्र (UDHR) ने भले ही आधुनिक मानवाधिकारों की अवधारणा को वैश्विक मान्यता प्रदान की हो, किंतु इन अधिकारों की व्याख्या और उनका स्वरूप विभिन्न सभ्यताओं और सांस्कृतिक परंपराओं में भिन्न रहा है। भारत की प्राचीन और समृद्ध ज्ञान परंपरा एक ऐसी ही सांस्कृतिक धारा है, जिसमें मानव जीवन, उसके अधिकार, दायित्व और समाज के प्रति उत्तरदायित्व को व्यापक और गूढ़ रूप में व्याख्यायित किया गया है। यह परंपरा आज भी प्रासंगिक है, विशेषकर तब जब आधुनिक मानवाधिकार विमर्श, संस्कृति–निरपेक्षता और नैतिकता की सीमाओं को लेकर आलोचनाओं का सामना कर रहा है।

भारतीय ज्ञान परंपरा, चाहे वह वैदिक दर्शन हो, उपनिषदों की आध्यात्मिक व्याख्याएं हों, बौद्ध–जैन तर्कशास्त्र हो या लोक आस्थाओं में रचा–बसा नैतिक बोध कृ सभी में मानव मात्र के कल्याण की कामना अंतर्निहित रही है। इस परंपरा में अधिकारों की अवधारणा कभी भी निरपेक्ष या स्वायत्त नहीं रही, बल्कि उसे समाज, धर्म और कर्तव्य के साथ अंतःसंबद्ध रूप में देखा गया है। आधुनिक समय में जब मानवाधिकार की चर्चा मुख्यतः कानूनी और राजनीतिक भाषा में होती है, तब भारतीय दृष्टिकोण इस विमर्श में नैतिकता, आध्यात्मिकता और सामाजिक संतुलन का भाव लेकर आता है, जो आज के खंडित मानवतावादी दृष्टिकोण में एकीकृत चेतना का आधार बन सकता है।

महात्मा गांधी के 'सर्वोदय', विनोबा भावे के 'भूदान आंदोलन', और डॉ. बी. आर. आंबेडकर के 'न्याय आधारित समाज' की कल्पनाओं में भारतीय ज्ञान परंपरा की अंतर्धारा स्पष्ट रूप से बहती है। गांधीजी का 'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' यह प्रतिपादित करता है कि संपत्ति पर अधिकार, दायित्व का पर्याय है, न कि स्वेच्छाचार का। डॉ. आंबेडकर ने जहाँ भारतीय समाज की सामाजिक बुराइयों की आलोचना की, वहीं भारतीय दर्शन की मूलभूत लोकतांत्रिक चेतना को संविधान के निर्माण में समाहित भी किया। आज जब मानवाधिकारों को केवल कानूनों के माध्यम से लागू करने का प्रयास किया जाता है, तब गांधी और आंबेडकर जैसे चिंतकों की सोच इस विमर्श में नैतिक और सांस्कृतिक गहराई जोड़ती है।

भारतीय संविधान स्वयं इस समन्वित दृष्टिकोण का उदाहरण है। संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित 'न्याय', 'स्वतंत्रता', 'समानता' और 'बंधुता' की अवधारणाएँ आधुनिक मानवाधिकार सिद्धांतों से जुड़ी अवश्य हैं, परंतु वे भारतीय ज्ञान परंपरा की जीवन–दृष्टि से भी अनुप्राणित हैं। अनुच्छेद 21, जो जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार देता है, केवल जीवित रहने की स्वतंत्रता नहीं, बल्कि गरिमापूर्ण जीवन का

अधिकार प्रदान करता है और यह गरिमा भारतीय दर्शन में 'अहिंसा', 'करुणा', 'धर्म' और 'कर्तव्यबोध' से जुड़ी हुई है।

आज वैश्विक मंचों पर मानवाधिकारों को सार्वभौमिक मानते हुए भी सांस्कृतिक विविधता के अधिकार की मांग उठ रही है। इस संदर्भ में भारतीय परंपरा 'सर्वधर्म समभाव', 'वसुधैव कुटुंबकम' और 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' जैसे सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट संदेश देती है कि मानवाधिकार केवल व्यक्ति–केंद्रित नहीं होने चाहिए, बल्कि उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक संदर्भों में भी समझना होगा।

हालांकि, भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, लैंगिक विषमता और सांप्रदायिक तनाव जैसे यथार्थ प्रश्न इस ज्ञान परंपरा की आलोचनात्मक समीक्षा की माँग भी करते हैं। यह सही है कि परंपरा में कई ऐसी संरचनाएं थीं जो आधुनिक मानवाधिकारों के मापदंड पर खरी नहीं उतरतीं, किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि स्वयं भारतीय परंपरा में इन विसंगतियों को चुनौती देने की आत्मशक्ति विद्यमान रही है। बौद्ध और जैन मतों ने जाति प्रथा का विरोध किया, वेदों में स्त्री शिक्षा और स्वाधीनता की वकालत की गई, और संत परंपरा ने मानव मात्र की समानता को रेखांकित किया। अतः भारतीय परंपरा की आलोचना उसे नकारने के लिए नहीं, बल्कि उसके भीतर की आत्मसुधार की क्षमता को जाग्रत करने हेतु होनी चाहिए।

आज शिक्षा के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा के इन मूल्यों को युवा पीढ़ी तक पहुँचाना अत्यंत आवश्यक है। यह परंपरा केवल इतिहास नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत जीवन–दृष्टि है, जो व्यक्ति को अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्यों की महत्ता भी सिखाती है। यह दृष्टिकोण किसी एक पक्ष कृ अधिकार या कर्तव्य कृ पर केंद्रित न होकर दोनों के संतुलन पर आधारित है। जब समाज केवल अधिकारों की बात करता है, तब कर्तव्यों की उपेक्षा सामाजिक विघटन और नैतिक संकट को जन्म देती है। लेकिन जब अधिकारों के साथ–साथ कर्तव्यों की चेतना भी विकसित की जाती है, तब एक न्यायसंगत, संतुलित और समरस समाज की स्थापना संभव होती है। इस प्रकार, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा का मानवाधिकार चिंतन न केवल हमारे सांस्कृतिक आत्मबोध को सशक्त करता है, बल्कि वैश्विक मानवाधिकार विमर्श में एक गहराई, समग्रता और नैतिकता भी जोड़ता है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि अधिकार और कर्तव्य दो अलग दिशाएँ नहीं, बल्कि एक ही मार्ग के दो पहिये हैं, जिनके संतुलन से ही सभ्य और संवेदनशील समाज की गति संभव है।

निष्कर्ष (Conclusion):– भारतीय ज्ञान परंपरा और मानवाधिकारों के बीच का संबंध अत्यंत गहरा और विस्तृत है। यह परंपरा मानव मात्र के प्रति सम्मान, सहिष्णुता, समता और स्वतंत्रता की भावना को पोषित करती है। भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण केवल अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि कर्तव्यों का भी स्पष्ट उल्लेख करता है, जिससे अधिकार और कर्तव्य के बीच संतुलन बना रहता है। इस दृष्टिकोण में मानव मात्र के कल्याण और सार्वभौमिकता का संदेश निहित है, जो मानवाधिकारों के वैश्विक स्वरूप को और भी व्यापक और समग्र बनाता है। समकालीन समय में, भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों को मानवाधिकार शिक्षा और नीति निर्माण में समावेशित करना आवश्यक है। इस परंपरा के सिद्धांत न केवल भारतीय समाज के लिए, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी एक सशक्त मानवाधिकार दृष्टिकोण का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार, सांस्कृतिक जागरूकता और सामाजिक न्याय की भावना को प्रोत्साहित करना अनिवार्य है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और मानवाधिकारों का बोध न केवल ऐतिहासिक धरोहर है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों का समाधान भी प्रस्तुत करता है। यह दृष्टिकोण मानवाधिकारों के आदर्शों को एक नैतिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक आधार प्रदान करता है, जो एक समतामूलक, न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण समाज के निर्माण में सहायक हो सकता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परंपरा का मानवाधिकारों के प्रति दृष्टिकोण केवल बौद्धिक विवेचन का विषय नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों और नैतिकता का जीवन्त अनुभव है।

संदर्भ सूचीः

1. त्रिपाठी, आर. के., भारतीय दर्शन और मानवाधिकार, वाराणसीः ज्ञान भारती पब्लिकेशन, 2018।
2. झा, वी. एन., प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा, दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2016।
3. गुहा, रामचंद्र, भारतः एक परिचय, पेंगुइन पब्लिकेशन, 2019।
4. कुमार, सुनील, मानवाधिकारः ऐतिहासिक और वैधानिक परिप्रेक्ष्य, लखनऊः यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2020।
5. शर्मा, अरुणा, वैश्विक मानवाधिकार और भारतीय दृष्टिकोण, जयपुरः साहित्य प्रकाशन, 2017।
6. राय, मोहिनी, धर्म, समाज और मानवाधिकारः भारतीय संदर्भ, मुंबईः लोकमंगल पब्लिकेशन, 2018।
7. Sharma, A., *Human Rights in Indian Philosophy*, New Delhi: Oxford University Press, 2015.
8. Chakraborty, P., *Indian Ethics and Human Rights: A Philosophical Perspective*, Kolkata: National Book Trust, 2017.
9. Sen, Amartya, *The Idea of Justice*, Cambridge: Harvard University Press, 2009.
10. Nussbaum, Martha, *Women and Human Development: The Capabilities Approach*, New York: Cambridge University Press, 2000.